

प्रत्यक्ष विचार

प्रत्यक्षके संबन्धमें अन्य मुद्दों पर लिखनेके पहले यह जता देना जरूरी है कि प्राचीन समयमें लक्षणकार ऋषि प्रत्यक्ष लक्षणका लक्ष्य कितना समझते थे अर्थात् वे जन्य प्रत्यक्ष मात्रको लक्ष्य मानकर लक्षण रचते थे, या जन्य-नित्य-साधारण प्रत्यक्षको लक्ष्य मानकर लक्षण रचते थे जैसा कि उत्तरकालीन नैयायिकोंने आगे जाकर जन्य-नित्य साधारण प्रत्यक्षका लक्षण रचा है ? जहाँ तक देखा गया उससे यही जान पड़ता है कि प्राचीन समयके लक्षणकारोंमें से किसीने चाहे वह ईश्वराविरोधी नैयायिक वैशेषिक ही क्यों न हो जन्य-नित्य साधारण प्रत्यक्षका लक्षण बनाया नहीं है । ईश्वराविरोधी हो या ईश्वर-विरोधी सभी दर्शनकारोंके प्राचीन मूल ग्रन्थोंमें एक मात्र जन्यप्रत्यक्षका ही निरूपण है । नित्यप्रत्यक्षका किसीमें सम्भव भी है और सम्भव है तो वह ईश्वरमें ही होता है इस बातका किसी प्राचीन ग्रन्थमें सूचन तक नहीं^१ । अपौरुषेयत्वके द्वारा वेदके प्रामाण्यका समर्थन करनेवाले मीमांसकोंके विरुद्ध न्याय-वैशेषिक दर्शनने यह स्थापन तो शुरू कर दिया कि वेद शब्दात्मक और अनित्य होनेसे उसका प्रामाण्य अपौरुषेयत्व-मूलक नहीं किन्तु पौरुषेयत्व-मूलक ही है । फिर भी उस दर्शनके प्राचीन विद्वानोंने वेद-प्रणेतारूपसे कहीं ईश्वरका स्पष्ट स्थापन नहीं किया है । उन्होंने वेदको आस ऋषिप्रणीत कह कर ही उसका प्रामाण्य मीमांसक-सम्मत प्रक्रियासे भिन्न प्रक्रिया द्वारा स्थापित किया और साथ ही वेदाप्रामाण्यवादी जैन बौद्ध आदिको जवाब भी दे दिया कि वेद प्रामाण्य है क्योंकि उसके प्रणेतार हमारे मान्य ऋषि आस ही रहे^२ । पिछले

१. वैशे० ३. १. १८ । 'इन्द्रियार्थसन्निकर्षोत्पन्नमव्यपदेश्यमव्यभिचारि व्यवसायात्मकं प्रत्यक्षम्'—न्यायसू० १. १. ४ । 'प्रतिविप्रयाध्यवसायो दृष्टम्'—सांख्यका० ५ । सांख्यसू० १. ८६ । योगभा० १. ७ । 'सत्संप्रयोगे पुरुषस्येन्द्रियाणाम्.....'—जैमि० १. १. ४ । 'आत्मेन्द्रियमनोऽर्थात् सन्निकर्षात् प्रवर्तते । व्यक्ता तदात्वे या बुद्धिः प्रत्यक्षं सा निरूप्यते ॥'—चरकसं० ११. २० ।

२. न्यायसू० १. १. ७; २. १. ६६ । वैशे० ६. १. १ ।

व्याख्याकार नैयायिकोंने जैसे ईश्वरको जगत्स्रष्टा भी माना और वेद-प्रणीता भी, इसी तरह उन्होंने उसमें नित्यज्ञान की कल्पना भी की वैसे किसी भी प्राचीन वैदिक दर्शनसूत्रग्रन्थोंमें न तो ईश्वरका जगत्स्रष्टा रूपसे न वेदकर्ता रूपसे स्पष्ट स्थापन है और न कहीं भी उसमें नित्यज्ञानके अस्तित्वका उल्लेख भी है। अतएव यह सुनिश्चित है कि प्राचीन सभी प्रत्यक्ष लक्षणोंका लक्ष्य केवल अन्य प्रत्यक्ष ही है। इसी अन्य प्रत्यक्षको लेकर कुछ मुद्दों पर यहाँ विचार प्रस्तुत है।

१. लौकिकालौकिकता—प्राचीन समयमें लक्ष्यकोटिमें अन्यमात्र ही निविष्ट था फिर भी चार्वाक के सिवाय सभी दर्शनकारोंने अन्य प्रत्यक्षके लौकिक अलौकिक ऐसे दो प्रकार माने हैं। सभीने इन्द्रियजन्य और मनोमात्रजन्य वर्तमान संबद्ध-विषयक ज्ञानको लौकिक प्रत्यक्ष कहा है। अलौकिक प्रत्यक्षका वर्णन भिन्न-भिन्न दर्शनोंमें भिन्न-भिन्न नामसे है। सांख्य-योग, ^१ न्याय-वैशेषिक, ^२ और बौद्ध ^३ सभी अलौकिक प्रत्यक्षका योगि-प्रत्यक्ष या योगि-ज्ञान नामसे निरूपण करते हैं जो योगजन्य सामर्थ्य द्वारा जनित माना जाता है।

मीमांसक जो सर्वज्ञत्वका खासकर धर्माधर्मसाक्षात्कारका एकान्त विरोधी है वह भी मोक्षाङ्गभूत एक प्रकारके आत्मज्ञानका अस्तित्व मानता है जो वस्तुतः योगजन्य या अलौकिक ही है ^४।

वेदान्तमें जो ईश्वरसाक्षीचेतन्य है वही अलौकिक प्रत्यक्ष स्थानीय है।

जैन दर्शनकी आगमिक परम्परा ऐसे प्रत्यक्षको ही प्रत्यक्ष कहती है ^५ क्योंकि उस परम्पराके अनुसार प्रत्यक्ष केवल वही माना जाता है जो इन्द्रिय-जन्य न हो। उस परम्पराके अनुसार तो दर्शनान्तरसंमत लौकिकप्रत्यक्ष प्रत्यक्ष नहीं पर परोक्ष है ^६ फिर भी जैन दर्शनकी तार्किक परम्परा प्रत्यक्षके दो प्रकार मानकर एकको जिसे दर्शनान्तरोंमें लौकिक प्रत्यक्ष कहा है सांख्यवहारिक

१. योगसू० ३. ४४। सांख्यका० ६४।

२. वैशेष० ६. १. १३-१५।

३. न्यायवि० १. ११।

४. 'सर्वत्रैव हि विज्ञानं संस्कारत्वेन गम्यते पराङ्गं चात्मविज्ञानादन्यत्रेत्यवधारणात् ॥'—तन्त्रवा० पृ० २४०।

५. तत्त्वार्थ० १. २२।

६. तत्त्वार्थ० १. ११।

प्रत्यक्ष कहती है^१ और दूसरेको जो दर्शनान्तरोंमें अलौकिक प्रत्यक्ष कहा जाता है पारमार्थिक प्रत्यक्ष कहती है। तथा पारमार्थिक प्रत्यक्षके कारणरूपसे लब्धि या विशिष्ट आत्मशक्तिका वर्णन करती है, जो एक प्रकारसे जैन परिभाषामें योगज धर्म ही है।

२. अलौकिकमें निर्विकल्पका स्थान—अब प्रश्न यह है कि अलौकिक प्रत्यक्ष निर्विकल्पक ही होता है या सविकल्पक ही होता है, या उभयरूप ? इसके उत्तरमें एकवाक्यता नहीं। तार्किक बौद्ध और शाङ्करवेदान्त^२ परम्पराके अनुसार तो अलौकिक प्रत्यक्ष निर्विकल्प ही संभवित है सविकल्पक कभी नहीं। रामानुजका मत^३ इससे बिल्कुल उलटा है, तदनुसार लौकिक हो या अलौकिक कोई भी प्रत्यक्ष सर्वथा निर्विकल्पक संभव ही नहीं पर न्याय वैशेषिक आदि अन्य वैदिक दर्शनके अनुसार अलौकिक प्रत्यक्ष सविकल्पक निर्विकल्पक-उभय संभवित जान पड़ता है। यहाँ संभवित शब्दका प्रयोग इसलिए किया है कि भासवर्ज (न्यायसार पृ० ४) जैसे प्रबल नैयायिकने उक्तरूपसे द्विविध योगि-प्रत्यक्षका स्पष्ट ही कथन किया है फिर भी कणादसूत्र और प्रशस्तपादभाष्य आदि प्राचीन ग्रन्थोंमें ऐसा कोई स्पष्ट निर्देश नहीं। जैन परम्पराके अनुसार अलौकिक या पारमार्थिक प्रत्यक्ष उभयरूप है। क्योंकि जैन दर्शनमें जो अवधिदर्शन तथा केवलदर्शन नामक सामान्यबोध माना जाता है वह अलौकिक निर्विकल्पक ही है। और जो अवधिज्ञान, मनःपर्ययज्ञान तथा केवलज्ञानरूप विशेषबोध है वही सविकल्पक है।

३. प्रत्यक्षत्वका नियामक—प्रश्न है कि प्रत्यक्षत्वका नियामक तत्त्व क्या है, जिसके कारण कोई भी बोध या ज्ञान प्रत्यक्ष कहा जाता है ? इसका जवाब भी दर्शनोंमें एकविध नहीं। नव्य शाङ्कर वेदान्तके अनुसार प्रत्यक्षत्वका नियामक है प्रमाणचैतन्य और विषयचैतन्यका अभेद जैसा कि वेदान्तपरिभाषा (पृ० २३) में सविस्तर वर्णित है। न्याय वैशेषिक, सांख्य-योग, बौद्ध, भीमांसक दर्शनके अनुसार प्रत्यक्षत्वका नियामक है सन्निकर्षजन्यत्व, जो सन्निकर्ष से, चाहे वह सन्निकर्ष लौकिक हो या अलौकिक, जन्य है, वह सब प्रत्यक्ष। जैन दर्शनमें प्रत्यक्षके नियामक दो तत्त्व हैं। आगमिक परम्पराके अनुसार तो एक मात्र

१. टिप्पणी पृ० २२।

२. Indian Psychology : Perception. P. 352.

३. 'अतः प्रत्यक्षस्य कदाचिदपि न निर्विशेषविषयत्वम्'—श्री भाष्य पृ० २१।

आत्ममात्र सापेक्षत्व ही प्रत्यक्षत्वका नियामक (सर्वार्थ १. १२) है। जब कि तार्किक परम्पराके अनुसार उसके अलावा इन्द्रियमनोजन्यत्व भी प्रत्यक्षत्वका नियामक फलित होता है। (प्रमाणमी० १.२०) वस्तुतः जैनतार्किक परम्परा न्याय-वैशेषिक आदि वैदिक दर्शनानुसारिणी ही है।

४. प्रत्यक्षत्वका क्षेत्र—प्रत्यक्षत्व केवल निर्विकल्पकमें ही मर्यादित है या वह सविकल्पक में भी है? इसके जवाब में बौद्ध का कथन है कि वह मात्र निर्विकल्पकमें मर्यादित है। जब कि बौद्ध भिन्न सभी दर्शनोंका मन्तव्य निर्विकल्पक-सविकल्पक दोनोंमें प्रत्यक्षत्वके स्वीकारका है।

५. जन्य-नित्यसाधारण प्रत्यक्ष—अभीतक जन्यमात्रको लक्ष्य मानकर लक्षणकी चर्चा हुई पर मध्ययुगमें जब कि ईश्वरका जगत्कर्तृरूपसे या वेदप्रणेतृ रूपसे न्याय-वैशेषिकादि दर्शनोंमें स्पष्ट स्थान निर्णीत हुआ तभीसे ईश्वरीय प्रत्यक्ष नित्य माने जानेके कारण जन्य-नित्य उभय साधारण प्रत्यक्ष लक्षण बनानेका प्रश्न ईश्वरवादियोंके सामने आया। जान पड़ता है ऐसे साधारण लक्षणका प्रयत्न भासवर्षने सर्वप्रथम किया। उसने 'सम्यगपरोक्षानुभव' (न्यायसार पृ० २) को प्रत्यक्ष प्रमा कहकर जन्य-नित्य उभय-प्रत्यक्षका एक ही लक्षण बनाया। शालिकनाथ जो प्रभाकरका अनुगामी है उसने भी 'साक्षात्प्रतीति' (प्रकरणप० पृ० ५१) को प्रत्यक्ष कहकर दूसरे शब्दोंमें बाह्यविषयक इन्द्रियजन्य तथा आत्मा और ज्ञानग्राही इन्द्रियाजन्य ऐसे द्विविध प्रत्यक्ष (प्रकरणप० पृ० ५१) के साधारण लक्षणका प्रणयन किया। पर आगे जाकर नव्य नैयायिकोंने भासवर्षके अपरोक्ष पद तथा शालिकनाथके साक्षात्प्रतीति पदका 'ज्ञानाकरणकज्ञान' को जन्य-नित्य साधारण प्रत्यक्ष कहकर नव्य परिभाषामें स्पष्टीकरण किया (मुक्ता० ५२)। इधर जैनदर्शनके तार्किकोंमें भी साधारण-लक्षणप्रणयनका प्रश्न उपस्थित हुआ जान पड़ता है। जैन दर्शन नित्यप्रत्यक्ष तो मानता ही नहीं अतएव उसके सामने जन्य-नित्यसाधारण लक्षणका प्रश्न न था। पर सांख्यवैशेषिक, पारमार्थिक उभयविध प्रत्यक्षके साधारण लक्षणका प्रश्न था। जान पड़ता है इसका जवाब सर्वप्रथम सिद्धसेन दिवाकरने ही दिया। उन्होंने अपरोक्षरूप ज्ञानको प्रत्यक्ष कहकर सांख्यवैशेषिक-पारमार्थिक उभयसाधारण अपरोक्षत्वको लक्षण बनाया (न्याया० ४)। यह नहीं कहा जा सकता कि सिद्धसेनके 'अपरोक्ष'पदके प्रयोगका प्रभाव भासवर्षके लक्षणमें है या नहीं? पर इतना तो निश्चित ही है कि जैन परम्परामें अपरोक्षत्वरूपसे साधारण लक्षणका प्रारंभ सिद्धसेनने ही किया।

६. दोषका निवारण—सिद्धसेनने अपरोक्षत्वको प्रत्यक्ष मात्रका साधारण लक्षण बनाया । पर उसमें एक ब्रुटि है जो किसी भी सूक्ष्मप्रज्ञ तार्किकसे छिपी रह नहीं सकती । वह यह है कि अगर प्रत्यक्षका लक्षण अपरोक्ष है तो परोक्षका लक्षण क्या होगा ? अगर यह कहा जाय कि परोक्षका लक्षण प्रत्यक्षभिन्नत्व या अप्रत्यक्षत्व है तो इसमें स्पष्ट ही अन्योन्याश्रय है । जान पड़ता है इस दोषको दूर करनेका तथा अपरोक्षत्वके स्वरूपको स्फुट करनेका प्रयत्न सर्वप्रथम भट्टारक अकलङ्कने किया । उन्होंने बहुत ही प्राञ्जल शब्दोंमें कह दिया कि जो ज्ञान विशद है वही प्रत्यक्ष है—(लघी० १. ३) । उन्होंने इस वाक्यमें साधारण लक्षण तो गर्भित किया ही पर साथ ही उक्त अन्योन्याश्रय दोषको भी ढाल दिया । क्योंकि अब अपरोक्षपद ही निकल गया, जो परोक्षत्वके निर्वचनकी अपेक्षा रखता था । अकलङ्क की लाक्षणिकताने, केवल इतना ही नहीं किया पर साथ ही वैशद्यका स्फोट भी कर दिया । वह स्फोट भी ऐसा कि जिससे सांख्यव-हारिक पारमार्थिक दोनों प्रत्यक्षका संग्रह हो । उन्होंने कहा कि अनुमानादिकी अपेक्षा विशेष प्रतिभास करना ही वैशद्य है—(लघी० १. ४) । अकलङ्कका यह साधारण लक्षणका प्रयत्न और स्फोट ही उत्तरवर्ती सभी श्वेताम्बर-दिगम्बर तार्किकोंके प्रत्यक्ष लक्षणमें प्रतिबिम्बित हुआ । किसी ने विशद पदके स्थानमें 'स्पष्ट'पद (प्रमाणन० २.२) रखा तो किसीने उसी पदको ही रखा—(परी २. ३) ।

आ० हेमचन्द्र जैसे अनेक स्थलोंमें अकलङ्कानुगामी हैं वैसे ही प्रत्यक्षके लक्षणके बारेमें भी अकलङ्कके ही अनुगामी हैं । यहाँ तक कि उन्होंने तो विशद पद और वैशद्यका विवरण अकलङ्कके समान ही रखा । अकलङ्ककी परिभाषा इतनी दृढ़मूल हो गई कि अन्तिम तार्किक उपाध्याय यशोविजयजीने भी प्रत्यक्षके लक्षणमें उसीका आश्रय किया—तर्कभाषा० पृ० १ ।

ई० १६३६]

[प्रमाण मीमांसा